

भारत का सांस्कृतिक विकास: जरूरत आत्म-अन्वेषण की

**(Cultural Evolution Of India: Need For Self-Introspection)**

By Santosh Jha

\*\*



*Copyright 2015 Santosh Jha*

*Smashwords Edition*

\*\*

**Other Smashwords Titles By Santosh Jha**

OnlyNess (Fiction)

Probability (Fiction)

Back To Bliss: A Journey To Zero (Fiction)

Autobiography Of A Duffer (Fiction)

Not Man Enough (Fiction)

Nurturance (Fiction)

Naked Solutions Of Dressed Up Life Woes (Non-fiction)

Habitual Hero: The Art Of Winning (Non-fiction)

Maya And Leela: Utility In Life's Futility (Non-fiction)

Why We Flop In Love (Non-fiction)

Wisdom Of Wellness: Perpetuity Of Poise Of Purpose (Non-fiction)

Decipher Destiny: Decode God's Will (Non-fiction)

Youth Sanity In Crazy Culture (Non-fiction)

Redeem & Reinvent The Art Of Lost Wellness (Non-fiction)

India Beyond Stampede Of Stupidities (Non-fiction)

Karta: Life-Inspiring Essays On Cognition, Consciousness & Causality

Enter New Year A New You (Non-fiction)

Why Do You Want To Change Me? (Non-fiction)

Hey Beautiful, You Are The Hope (Non-fiction)

Young, Restless And In Love (Non-fiction)

Bare Basics (Non-fiction)

I Am God (Non-fiction)

Wellness And Excellence Mantra For 2015 (Non-fiction)

Acceptance (Non-fiction)

\*\*

## License Notes

Thank you for downloading this free ebook. Although this is a free book, it remains the copyrighted property of the author, and may not be reproduced, copied and distributed for commercial or non-commercial purposes. Thanks for your support.

\*\*

## प्रस्तावना

न ही यह कोई किताब है, न ही मैं कोई लेखक! कहने को मैंने 24 ईबुक्स लिखी हैं अब तक, जो अंग्रेजी में हैं, मगर मैं उन्हें आपसब से बातचीत ही मानता हूं। क्यूं कि मूलतः मैं लेखक नहीं, बल्कि सहज-सरल इंसान हूं, जिसे गुफ्तगूं के सिलसिले के खुशनुमेंपन और सार्थकता-उपयोगिता पे भरोसा है। एक ऐसी ही मासूम सी गुफ्तगूं एक सिलसिला पाने की जिद ठाने बैठी थी, सो सोचा, चलिए, सब अपने ही तो हैं, कुछ कहा-सुना जाये तो खुशनुमेपन में शायद कुछ इजाफा ही हो। हिंदी में लिखने में एक अजीब सा अपनापन है। वैसे तो कुछ भी लिखने में थोड़ा डरता हूं क्यूं कि षब्दों द्वारा लेखन के माध्यम से भावाव्यक्ति की सार्थकता का मैं बहुत कायल नहीं। हालांकि, हिंदी मुझे आती नहीं, लेकिन इस भाषा में लिखने में वैसे डर नहीं लगता। वैसे तो अंग्रेजी भी कहां आती है! बात जो आपसब से कहनी है, उसके औचित्य और सार्थकता को लेकर दो राय होना लाजमी है। मेरी बस गुजारिश इतनी है कि आपसब इसे बेहद सहज-सरल-सुगम भाव व चेतना से पढ़ें। मेरी खुशी इसमें है कि मैं यह सब आपसब से कह पा रहा हूं। आप अगर इसे उसी सहज भाव में पढ़ पायें, जिस सहज आत्मीयता के भाव से यह सब कहा गया है

तो इस मासूम सी गुफतगूं की सार्थकता बन पायेगी। ऐसा होने पर स्वतः ही यहां कहे गये शब्द हमसब के आत्मचिंतन में स्थान पा सकेगा। यही आरजू है....।

\*\*

शायद, कई साल हुए, शब्द अपनी मासूमियत खो बैठे हैं....

वैज्ञानिक सोच कहती है - हर व्यवस्था समय के साथ अव्यवस्थित होने लगती है। फिर, भाषा और शब्दों के माध्यम से जो अभिव्यक्ति-व्यवस्था है, उसको तो हमने अपनी सुविधापरस्त सोच के हिसाब से इतना तोड़ा-मरोड़ा है कि शब्दों की वह पुरानी बालसुलभ खूबसूरती व मासूम अल्हड़पन खत्म होती सी दिखती है।

अब आलम यह है, कि कुछ भी कहिये, कितने भी सहज-सरल भाव से उसकी शाब्दिक अभिव्यक्ति कीजिये, लोगों में बेहद तीखी प्रतिक्रिया होती है। शायद, समाज में इतना अधिक तनाव, असुरक्षा एवं अविश्वास भर गया है और सहज-सरल व्यक्तिगत या व्यापक सांस्कृतिक अभिव्यक्ति भी अब रातनीतिक सरोकारों से परे देखे जाने की परंपरा से महरूम हो चुकी है। ऐसे में कुछ ऐसा कहना जो एक व्यापक व तथाकथित सुव्यवस्थित समाज, उसकी प्रचलित संस्कृति एवं उसमें जी रहे व्यक्ति को आइना दिखाने जैसा हो, तो उस कथन की मासूमियत की सार्थकता की हत्या तय है। और बात अगर यह कहनी हो कि अपने भारतीय समाज, या यूं कह लें कि बृहद मानवीय समाज का 'कल्चरल इवोल्यूशन', सांस्कृतिक विकास, वैसा नहीं हो पाया जैसा शायद होना चाहिए था, या हो सकता था और जिसकी वजह से ही 'व्यापक पिछड़ापन' एवं जीवन-संबंधी तमाम समस्याएं हैं, तथा आज इसे सुधारने, या यूं कह ले कि इसे पुनर्परिभाषित करने की बेहद जरूरत है, तब तो संभवतः अर्थ का अनर्थ समझने की जिद सी ठन जायेगी।

फिर यह भी है, इंसानी समाज की सभी अवधारणाओं की तरह ही 'कल्चरल इवोल्यूशन' की अवधारणा भी दुविधा, विवादों और बहस से घिरी है। मुश्किल तो यह सर्वदा से ही है कि मनुष्य की सभी अवधारणाओं को लेकर दुविधा एवं विवाद है और रहेगा ही इसलिए, प्रथमदृष्टया ऐसा लगता है कि किसी भी एक विचार को लेकर बहसबाजी और कलह की स्थिति से बचा नहीं जा सकता। मगर, हम यहां इससे बच निकलते हुए अपनी सहज-सरल बात कह सकने की जुगत में हैं। हमें 'कल्चरल इवोल्यूशन', यानि सांस्कृतिक विकास-क्रम के विभिन्न सिद्धांतों के विवाद में जाने की जरूरत ही नहीं है। मगर, कुछ मूल बात समझ लेने से शायद कुछ आसानी हो।

हम बस इतना करने की मासूम एवं ईमानदार कोशिश कर रहे हैं कि सांस्कृतिक विकास-क्रम की जो भी सोच व सिद्धांत हैं, उनको व कुछ अन्य वैचारिक पहलुओं को मानक मानते हुए इस पक्ष की ओर अपनी बातचीत को ले चलें कि हम भारतीयों के व्यापक समाज का कल्चरल इवोल्यूशन संभवतः सही नहीं हुआ है। यह भी कहना उचित है कि ऐसा विश्व के अन्य देशों के समाज के बारे में भी कहा जा सकता है।

ऐसा कहना कोई इल्जाम लगाने जैसा नहीं है। आप बस इतना समझ लीजें कि ऐसा एक हाइपोथेसिस, यानि परिकल्पना के तौर पर स्वीकार कर लेने से उस पड़ताल को एनर्जी मिल जाती है कि आज जब हम सब लोग भारत और उसके बेहतर विकास और समृद्धि की बात कर रहे हैं, तो अगर भारतीय समाज के कल्चरल इवोल्यूशन की भी बातचीत हो जाये तो इससे भविष्य के विकास योजनाओं एवं तैयारियों को बल मिलेगा और रास्ते प्रशस्त होंगे। ऐसा मान कर ही हम कल्चरल इवोल्यूशन के सही न होने के हाइपोथेसिस की पड़ताल करना चाह रहे हैं। यह पड़ताल आत्मचिंतन की वजह बन पाये, ऐसा सहज-सरल प्रयास है। यह पड़ताल बेहद जरूरी भी है, यह आगे संभवतः साबित भी हो सकेगी।

आमतौर पर, एक आम इंसान कल्चर एवं इवोल्यूशन जैसी गहन अवधारणाओं को लेकर ज्यादा सोचता नहीं है और उसे इनकी पापुलर या यूँ कहें कि प्रचलित मान्याताओं को स्वीकारने के अलावा

चारा भी नहीं होता। हम जब इस पड़ताल में बढ़ेंगे तो जरूरी हो जाता है कि पापुलर अवधारणाओं से परे भी जो सोच व विचार हैं संस्कृति व विकास-क्रम को लेकर, उन पर भी चर्चा करते चलें। पहला और आखिरी उद्देश्य ही है इस पड़ताल का कि हम सब हर मसले और मुद्दे को पूर्णता, व्यापकता व 'होलिज्म' में देख सकें।

तो पहले पापुलर और प्रचलित अवधारणाओं को लेकर ही बातचीत हो। आम तौर पर यह माना जाता रहा कि 'कल्चरल इवोल्यूशन' के जो मानक विकसित पश्चिमी देशों के समाज में स्थापित हुए, खासकर द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद, वही हर समाज के लिए तयशुदा रास्ता और मंजिल हैं। यानि, एक समाज का कट्टर धार्मिक सोच से निकल कर वैज्ञानिक सोच की तरफ बढ़ना तथा संकुचित एथनिक व भौगोलिक सोच से आगे निकल कर वैश्विक सोच तक जाना। 'कल्चरल इवोल्यूशन' को एक ऐसे विवेकपूर्ण समाज के निर्माण की स्थापक एनर्जी माना गया जिसमें माडर्न सोच, प्रजातांत्रिक शासन, गुणात्मक सुविधायुक्त जीवनशैली एवं उन्मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था जैसे अवयव मौजूद हों। यही संभवतः पापुलर अवधारणा है कल्चरल इवोल्यूशन की।

यह 'कल्चरल इवोल्यूशन' का पश्चिमी माडल है जिसे लगभग हर समाज में अब तक मान्यता मिलती रही है। लेकिन, कामयाब सुसंस्कृत समाज की अवधारणा का यह माडल, सर्वमान्य हो और इसकी अपनी समस्याएं व विफलताएं न हों, ऐसा नहीं दिखता। यह कह देना जरूरी है कि सैद्धांतिक एवं वैचारिक तौर पर इस माडल में भले ही कोई समस्या न हो मगर धरातल पर व्यवहारिक तौर पर कई समस्याएं देखने को मिलती हैं। इन पर चर्चा भी होती रही है। इसके ठोस कारण भी हैं, मगर हम उनकी चर्चा यहां नहीं करना चाहते। ऐसे में आज की तारीख में 'कल्चरल इवोल्यूशन' के आधार पर किसी समाज को पिछड़ा कहे जाने की बात ही आधारहीन दिखने लगती है। कहने को यह वैश्विक माडल है मगर स्थानीय संस्कृति की मिलावट के बाद कई खिचड़ी माडल उभरे हैं। तो हुआ यह है कि जब कोई

तय वैश्विक मानक ही नहीं हो, तो हर स्थानीय संस्कृति अपने को अच्छा और अन्य सभी को नकारा और बेकार मानने की स्वाभाविक जिद लेकर बैठ जाती है। यही तो हो भी रहा है - अपने देश में भी और पूरी दुनिया में।

आज चारों ओर जो शोर है, वह है क्या? बहुत साल पहले एक विद्वान ने कहा था, “भविष्य में सभी बड़े विवाद, यहां तक कि प्रलयकारी युद्ध भी सांस्कृतिक एवं धार्मिक मुद्दों पर होंगे।” यह साफ-साफ दिख भी रहा है। तो डर यह भी है कि ऐसे हालात में यह कहना कि हमारे समाज का सही ढंग से ‘कल्चरल इवोल्यूशन’ या सांस्कृतिक विकास कभी नहीं हो सका, अपने आप में एक बड़े ‘युद्ध’ को निमंत्रण देने जैसा है। आज के माहौल में इस बात की मासूमियत किसी भी तरह सहजता-सरलता से नहीं ली जायेगी, ऐसा डर बना हुआ है।

यह दुहराना जरूरी है कि यह कोई इल्जाम नहीं है अपने देशवासियों पर। ऐसा सोचना भी एक तरह की कुंठित मनोदशा है जो ‘कल्चरल इवोल्यूशन’ के सही ढंग से न होने की तसदीक करता है। फिर, यह भी सही ही है कि देश के लगभग सभी हिस्सों में समाज के ‘कल्चरल इवोल्यूशन’ की दोहरी स्थिति है। भारतीय समाज के एक बड़े हिस्से का ‘कल्चरल इवोल्यूशन’ नहीं हो सका है या यूं कहें कि जो भी प्रचलित मानक हैं, उनके तहत भी यह दिखता है कि सांस्कृतिक विकास-क्रम में वे हिस्से पिछड़ रहे हैं। यह हिस्सा सांस्कृतिक विवेक और व्यक्तिगत जीवन-मूल्यों के मामले में ‘पिछड़ा’ होने की वजह से विभिन्न सामाजिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं से जूझ रहा है।

दूसरी तरफ, एक ऐसा भी हिस्सा है भारतीय समाज का जिसके बारे में कहा तो जाता है कि उसका ‘कल्चरल इवोल्यूशन’ हुआ है और वह ‘सोच और विवेक’ में ‘मार्डन और लिबरल’ है। मगर, परखा जाये तो इस समाज का भी ‘कल्चरल इवोल्यूशन’ दोषपूर्ण प्रतीत होता है, क्योंकि इस समाज के ज्यादातर लोगों ने ‘कल्चरल इवोल्यूशन’ के पश्चिमी मानकों को मानकर स्वयं को विकसित

किया है, जो कि अब स्वयं विवादों और समस्याओं के घेरे में है। यह भी कहा जाना अनुचित नहीं दिखता कि भारतीय समाज का वह हिस्सा, जिसने पश्चिमी माडल को आत्मसात किया है, उसमें एक बड़े तबके ने 'खिचड़ी माडल' को स्वीकारा है, जो न पारंपरिक भारतीय है न मॉडर्न पश्चिमी ही है। यह माडल और भी दोषपूर्ण प्रतीत होता है। पड़ताल करके देखें तो इस तथाकथित मध्यवर्ग की समस्याएं सबसे ज्यादा हैं और इसी वर्ग में आगे भी सबसे ज्यादा द्वंद्व, कलह व 'हिपोक्रेसी' दिखेगी।

और, नतीजा यह है कि अब भारतीय समाज के अंदर ही इन दो धाराओं और सोच-प्रणाली के बीच घमासान मचा है। यह 'भारत' और 'इंडिया' की लड़ाई बेहद हास्यास्पद है मगर है जोरों की। सही दोनों ही नहीं हैं, समस्याएं दोनों के ही 'कल्चरल इवोल्यूशन' में हैं। मगर दोनों ही सामाजिक धड़ें एक दूसरे को अपनी समस्याओं के लिए जिम्मेदार मानते हैं और अपने को सही साबित करने के लिए किसी भी हद तक जाने को तैयार हैं।

\*\*

### **क्या हैं 'कल्चरल इवोल्यूशन' के सही मानक?**

नयी सहस्राब्दी मानवता के लिए नयी सोच एवं मानक ले कर आयी है। विश्व में कुछ बेहद सार्थक सोच बन रही है। ऐसा देख-समझ पाना आसान नहीं है। आधुनिक पापुलर संस्कृति में जहां चारों ओर उपभोग, बाजार, निवेश, रियलस्टेट, शेयरबाजार और अर्थतंत्र के अलावा सिर्फ राजनीतिक शोर ही सुनाई पड़ती है, वहीं कुछ बेहद संजीदा और समर्थ लोगों का छोटा सुमह ही सही, चुपचाप कुछ मूल सोच व चिंतन में लगा हुआ रहा है। उनका काम अब सामने आने लगा है।



यह मूल विषय हैं - चेतना, इंसान का मूल स्वभाव, उसकी चेतना-प्रक्रिया का उसके पर्यावरण व सामाजिक-सांस्कृतिक सोच पर असर आदि। विज्ञान ने मानवीय चेतना और उसके मूल स्वभाव को नये प्रारूप में समझने में मदद की है। आज इंसानी चेतना एवं मूलतः आदिचेतना को समझ पाने का बिलकुल नया व विश्वसनीय तरीका बन पड़ रहा है। हजारों सालों से हम जो स्वयं एवं अपनी शिखिशयत को समझते रहे हैं, उससे बेहद भिन्न है आधुनिक चेतना-प्रणाली। इस नयी सोच ने कई मूल प्रश्नों के नये आयाम जोड़े हैं और उनके जवाब भी इंसानी समाज की कई पापुलर अवधारणाओं को नकारने का अवसर बना रहे हैं। इसका कारण है इंसानी मस्तिष्क की कार्यप्रणाली की बेहतर समझ।

यह कहना बेहद जरूरी है कि वर्तमान मानवीय समाज एवं संस्कृतियों की जो मौजूदा समस्याएं एवं दुविधाएं हैं, वे सब एकबारगी खत्म होती दिखेंगी अगर हम सब इस नयी सोच के तहत चेतना एवं चेतना से जुड़े आयामों की पड़ताल करेंगे। मैंने अपनी सभी 24 किताबों में, चाहे वह फिक्शन हो या नानफिक्शन, इस नयी सोच एवं चेतना के नये आयामों के बारे में लिखा है। यह सारी किताबें ईबुक फारमैट में हैं और फ्री हैं।

इसी नयी सोच एवं चेतना की नयी समझ के कारण, मार्डन मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र के दिग्गज एक नये समाज की संरचना की बात कर रहे हैं। फिर, कुछ अर्थशास्त्री मानवता के लिए एक नयी आर्थिक सोच व प्रणाली की बात सामने ले कर आये हैं जो कैपिटलिस्ट एवं उन्मुक्त बाजार व्यवस्था वाली अर्थव्यवस्था के विकल्प के रूप में उभरने का दम रखती है। हम सब इंसान, चाहे वो पृथ्वी के किसी भी हिस्से में हो, सभी एक ऐसे बदलाव के दौर से गुजर रहे हैं जो बेहद अनिश्चित है। ऐसा हमें भले ही ना दिखे, क्यों कि हम सब अपनी-अपनी जिंदगियों में व्यस्त हैं, मगर यह बदलाव जड़ें जमा चुका है। इस बड़े बदलाव की वजह से, हम या तो कामयाब होंगे या फिर मिट भी सकते हैं।

यह आज बिलकुल स्पष्ट है कि मानव समाज और सभ्यता की वर्तमान समस्याएं मूलतः सांस्कृतिक ही हैं, इसलिए जो समाधान है, वह सांस्कृतिक विकास के जरिए ही हासिल होगा।

नयी सहस्राब्दी की नयी सोच 'कल्चरल इवोल्यूशन' का एक नया मानक भी दे रही है। यह नयी सोच यह कह रही है कि अब तक जो भी इवोल्यूशन हुआ, या जो विकास क्रम बन पड़ा है, वह 'एक्सीडेन्टल' था, यानि वह हो गया। मगर, अब इंसान इतना सक्षम जरूर है कि भविष्य में जो भी गुणात्मक बदलाव होने हैं, उन्हें 'प्लानिंग' करके समाज में स्थापित किया जा सकेगा। इस प्लानिंग की मूल रूपरेखा तैयार करेगा वैज्ञानिक तकनीक की इंसानी क्षमता। इस नये योजनाबद्ध सांस्कृतिक विकास का आधार बनेगी इंसान के दिमाग को लेकर नयी वैज्ञानिक समझ। हम आज इंसानों के व्यवहार की बेहतर समझ रख रहे हैं और इसलिए उसकी चेतना को लेकर जो तमाम अनसुलझे पक्ष थे, उनकी भी हमें आज बेहतर जानकारी है।

बेहद साधारण सी, सहज-सरल-सुगम सी बात है, समझ लेने से आगे की चर्चा को आत्मसात करने में सुविधा होगी। हम इंसानों की सोच, व्यवहार एवं इन दोनों के मिश्रण से बनी हमारी सभ्यता-संस्कृति तीन मूल अवधारणाओं, या यूं कह ले कि स्वीकृति पर आधारित हैं। वह तीन मूल तत्व हैं - चेतना, बोधस्वीकार्यता तथा कारकसंबंध, जिन्हें अंग्रेजी में '3सी' कहते हैं, यानि - 'कानसियसनेस', 'काॅगनिशन' और 'काउजैलिटी'। अबतक जो हमारी संस्कृति रही है, उसकी समस्याएं इन तीनों ही अवधारणाओं की दोषपूर्ण या एकपक्षीय समझ को लेकर रही हैं। हम आज इन तीनों ही तत्वों को वैज्ञानिक ज्ञान की वजह से पूर्णता एवं परिपक्वता में समझ सकने की काबिलियत पा चुके हैं। हम कौन हैं, जैसे हैं, वैसे क्यूं हैं, हम जो देख-समझ पाते हैं, यानि हमारी जो बोधव्यवस्था है, वह क्या व क्यूं है, जैसा दिखता-समझा जाता रहा है, वैसा है या उससे कुछ बेहद अलग है, जीवों तथा प्रकृतितत्वों के बीच क्या और कैसा संबंध व परस्परता है और इन सभी का पृथ्वी पर हम सबकी सोच-समझ पर व

जीवनप्रक्रिया पर कैसा प्रभाव है, आदि मूल प्रश्नों के सार्थक, सही व सुनिश्चित जवाब आज हमारे पास आने लगे हैं। इस नयी समझ व जानकारी ने ही हमारी अब तक की पूरी सभ्यता-संस्कृति की अवधारणा को पुनः परिभाषित करने की जरूरत महसूस करायी है। इसी नये ज्ञान के आलोक में यह बात निकली है कि अबतक का हमारा सांस्कृतिक विकास 'एक्सीडेंटल' रहा है, जिसे अब दुरुस्त करना है, एक बेहद 'प्लान्ड' व सुनियोजित तरीके से। बस, बात इतनी सी ही है। इस मूल हाईपोथेसिस को अगर हम-आप स्वीकार लेते हैं, तो हम सब जीवन व जीवन संबंधी सभी सोच व अवधारणाओं पर आत्मचिंतन के लिए तैयार हो पाते हैं। यही आज वक्त की सबसे जरूरी मांग है। यही सबसे अहम सांस्कृतिक चुनौती भी है। हम जितनी तेजी व सुगमता से इस नये ज्ञान को आत्मसात करके बदलाव के लिए राजी हो जायेंगे, उतनी ही संभावनाएं बढ़ेंगी इंसानी सभ्यता-संस्कृति के बेहतर विकासक्रम की।

तो, यह कहना लाजमी सा दिखता है कि भविष्य में जो भी सांस्कृतिक विकास का माडल बनेगा, वह चेतना और इंसानी व्यवहार की वैज्ञानिक समझ पर ही आधारित होगा, न की प्रचलित पापुलिस्ट फिलास्फी एवं सायकालिजी पर। अभी तक सांस्कृतिक विकास बिना किसी सुनिश्चित सोच-समझ के स्वतः होता आया। इंसानी चेतना व व्यवहार संबंधी समस्याओं को भी मूलतः फिलास्फी की अवधारणाओं के तहत देखा-परखा जाता रहा है। भविष्य का मनोविज्ञान एवं सांस्कृतिक मसले भी वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर देखे समझे जायेंगे, ऐसी सोच बन पड़ रही है। उदाहरण के तौर पर, आज भारत में ही नहीं, बल्कि दुनिया भर में जो न्यायतंत्र स्थापित है, वह सदियों पुरानी 'जूरिसप्रूडेंस' पर आधारित है, जो मूलतः फिलास्फी है। इसमें जो तथाकथित विज्ञान के भी अंश हैं, वह सदियों पुरानी मनोविज्ञान के हैं, जो अबतक सोशल सांयस के तहत ही विकसित हुआ है। आधुनिक मनोविज्ञान अब प्योर सांयस के अवयवों पर विकसित किया जा रहा है। इस नये मनोविज्ञान में फिलास्फिकल

पापुलिज्म के अंश नहीं हैं। जो भी है, वह ठोस वैज्ञानिक तथ्य हैं, जो विज्ञान की इंसानी मस्तिष्क की आधुनिक समझ पर आधारित है। इसलिए, इस प्रचलित जूरिसप्रूडेंस का आधार इंसानी चेतना व व्यवहार को लेकर पुरानी फिलास्फी व मनोविज्ञान पर आधारित मान्यताएं हैं। आज की तारीख में विज्ञान ने मानव चेतना व उसके मूल व्यवहार को लेकर जो नया ज्ञान प्रतिपादित किया है, वह इंसानों के मस्तिष्क एवं उसके माईड-बाडी की वास्तविक समझ पर आधारित है, जो पुरानी फिलास्फी व मनोविज्ञान से अलग भी है और व्यापक भी। इसलिए, स्पष्ट है कि आधुनिक संस्कृति में, जूरिसप्रूडेंस में तथा क्रिमिनल सायकालिजी में व्यापक बदलाव की अहमियत बन रही है। हमारी नयी वैश्विक संस्कृति में अब नये सिरे से बेहद संवेदनशील व जरूरी अवधारणाओं को विकसित करना होगा। यही बड़ा चैलेंज है और हमसब के लिए आत्मचिंतन का विषय भी। सबके लिए आज यह अहम है कि हमसब अपनी चेतना व 'स्व' बोध को नये सिरे से जानें-समझें। यही नई समझ, नये सांस्कृतिक विकास क्रम की रीढ़ बनेगी।

यह माना जा रहा है कि इंसान का अपना एक मूल स्वभाव है मगर, एक स्वस्थ समाज अगर जीवन के कुछ उच्च मूल्यों को शुरुआत से ही हर व्यक्ति में स्थापित कर पाये तो उस समाज का उत्कृष्ट 'कल्चरल इवोल्यूशन' हो पायेगा। इसके लिए शिक्षा का एक ऐसा माडल तैयार करने की पुरजोर कोशिश है जो वैज्ञानिक हो और साथ ही उत्कृष्ट जीवन-मूल्यों को समाज में स्थापित कर सकने में सक्षम हो। इस शिक्षा माडल से इंसान को अपने मूल स्वभाव से उपर उठकर समाजिक उत्कृष्टता के लिए कुछ उम्दा जीवन मूल्यों व मानकों को आत्मसात करने में सफलता मिलेगी। जूरिसप्रूडेंस की तरह ही हमारी शिक्षाप्रणाली भी सदियों पुरानी फिलासफी व सायकालाजी पर आधारित है जो हमारी सांस्कृतिक समस्याओं की जड़ है। इसलिए की यह एकपक्षीय व अवैज्ञानिक अवधारणाओं पर आधारित है।

\*\*

माना जा रहा है कि इंसानों के पांच मूल स्वभाव हैं और इन स्वभावों के कैसे रूप समाज में दिखते हैं, उन पर निर्भर करता है और तय होता है कि किसी समाज का कैसा 'कल्चरल इवोल्यूशन' हुआ है।

**यह पांच मूल स्वभाव हैं:**

वर्चस्व, देखभाल, सही-गलत का भेद, भय-उन्माद और व्यापकता की भावनाएं। यानि - 'डामिनेंस' , 'नर्चरेंस' , 'कांसेनसियसनेस' , 'न्येरोटिसिज्म' और ओपेननेस।

इन सभी स्वभावों और इनकी सामाजिक अभिव्यक्ति के डायनामिक्स को समझा जाये। फिर यह बात आती है कि इन स्वभावों की कैसी सामाजिक स्थिति को एक आदर्श 'कल्चरल इवोल्यूशन' का मानक माना जाये।

1. डामिनेंस या वर्चस्व: किसी भी समाज के विकास की पहली शर्त है लोगों में आपस में बेहतरी के लिए प्रतिस्पर्धा। यह इंसान के मूल स्वभाव में है। हर समाज में आपसी वर्चस्व की प्रतिस्पर्धा चलनी ही चाहिए मगर, यह जब 'लड़ाई' में तब्दील हो जाये या इस प्रतिस्पर्धा में जायज-नाजायज और सही-गलत का फर्क मिट जाये और प्रेम-करुणा के हर दायरे से बाहर चली जाये वर्चस्व की यह जंग, तो स्पष्ट साक्ष्य है कि समाज का 'कल्चरल इवोल्यूशन' गलत हुआ है और इसकी मूल एनर्जी गलत दिशा में जा रही है। बेहतर 'कल्चरल इवोल्यूशन' के मानक होंगे: स्त्री-पुरुष समानता, जातपात-धर्म-भाषा के आधार पर भेदभाव न होना, सबको बराबरी के अवसर का लाभ मिल पाना। यह बेहद दुखद है कि वर्चस्व का यह मूल स्वभाव आज समाज के एक तबके को दूसरे को प्रताड़ित करने का सुख देने लगा है। इसलिए ही बारहा यह

इल्जाम लगता रहा है कि हमारा सामज अभी भी 'केभ-मंटेलिटी' यानि, आदिमानव के दौर में ही जी रहा है। समाज में वर्चस्व किसे मिले, यह भी अहम है। परंपरा से ब्राह्मण, यानि विद्वता को ही बड़प्पन का मानक माना गया। विद्वान उसे माना जाना चाहिए जो अपने स्वभाव व चेतना की बंदिशों के उपर उठ कर सोच-समझ सके और सही-गलत का निर्णय कर सके। आज वर्चस्व किसे मिला हुआ है? वह जो किसी भी तरीके से पैसे कमा कर अपने संसाधनों का दुरुपयोग कर रहा है! यह एक गलत 'कल्चरल इवोल्यूशन' की निशानी है। माना जाता है, आज अपने देश में ही नहीं, विश्व भर में सिर्फ पांच प्रतिशत लोगों के पास पंचानवे प्रतिशत संसाधन हैं। इसे वर्चस्व की बड़ी सांस्कृतिक समस्या के रूप में हमसब नहीं देख पा रहे हैं। ऐसे कई मसले हैं, जैसे, आज युवाओं के 'आईकन' कैसे और कौन हैं? क्यों पाॅप स्टार्स को ही आईकन बनाया जा रहा है? यह कहना जरूरी है कि यह सांस्कृतिक समस्या सिर्फ भारत की नहीं है। विश्व भर के समाजों की सांस्कृतिक क्षितिज पर ऐसी ही समस्याओं के बादल मंडरा रहे हैं। मूल समस्या सांस्कृतिक है। वर्चस्व का भाव भले ही इंसान का मूल स्वभाव है मगर इंसान जब समाज में रहता है तब हम सब मिलकर एक सामाजिक, नैतिक एवं कानूनी दायरा तय करते हैं। परिवार तथा समाज, बाल्यावस्था से ही हर बच्चे में यह भाव भरता है कि उसे पूरी छूट है अपनी क्षमता का पूरा प्रदर्शन करने की एवं उसके अनुरूप समाज में अपनी प्रतिष्ठा व जगह बनाने की। मगर, उसका दायरा है प्रेम व सौहार्द की अवधारणा जो इस मूल स्वभाव के साथ चलेगी और कोई भी व्यक्तिगत कर्म व्यापक व सामाजिक औचित्य से बड़ा कभी भी नहीं हो सकता। फिर यही तत्व कानून के तहत भी कड़ाई से पालन किये जायें। पुराना सिद्धांत है, 'मेरा हाथ फैलाने का अधिकार वहीं तक है जहां से दूसरे की नाक शुरु होती है।' हर अधिकार के साथ-साथ, उतने ही सार्थकता से जुड़ी हैं कर्तव्य की अपेक्षा। जैसे, हम सब को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का मूल अधिकार प्राप्त है और इस अधिकार को व्यक्तिगत

विकास के लिए इस्तेमाल करने में परिवार, समाज व कानून भी हमें प्रेरित करता है और करना भी चाहिए। यह सांस्कृतिक विकास के लिए बेहद जरूरी तत्व है। मगर, आज यह विषय आत्मचिंतन का है कि क्या हम इस अधिकार का इस्तेमाल करते वक्त किसी दायरे, किसी कर्तव्यबोध को मानने को तैयार होते हैं? शायद नहीं। पुराना और मूल सत्य है - प्रिय बोलिए, सत्य बोलिए, मगर अप्रिय सत्य मत बोलिए। आज, आम जिंदगी में, शब्दों द्वारा अप्रत्यक्ष व प्रत्यक्ष हिंसा, हमारी बड़ी समस्या है। इंटरनेट की वजह से जो वर्चुअलिज्म बढ़ा है, साशलसाईट्स पर, उससे यह समस्या बेहद गंभीर हो गई है। यह बड़ी सांस्कृतिक चुनौती है। कहना इतना है कि अगर किसी को यह लगता भी है कि सत्य उसके पक्ष में है लेकिन अगर उस सत्य से किसी का या व्यापक समाज का हित नहीं सधता, तो उसको कहने-प्रचारित करने में बेहद सतर्कता बरतने की जरूरत होती है। मगर, हम सब लोग, अपनी स्वतंत्रता का तो बेहद ख्याल करते हैं मगर दूसरे की स्वतंत्रता एवं उसके अधिकार के बारे में कम सोचते हैं। फिर कानून और न्यायतंत्र भी ऐसा है कि वह अधिकार दिलाने में तो सक्षम होता है मगर किसी अधिकार के दुरुपयोग को कड़ाई से नियंत्रित कर पाने में बेहद कमजोर है। न्याय तंत्र संभवतः कानून तोड़ने वालों से ही निबटने में उतना सफल नहीं हो पा रहा फिर यह उम्मीद करना कि वह कर्तव्य पालन को भी कड़ाई से पालन करवा सकने में सफल हो, यह शायद सपने जैसा ही है। ऐसे कई मसले हैं। यह हमें सोचना है।

2. नर्चरेंस: यह एक बेहद व्यापक शब्द है। इंसान के मूल स्वभाव में है यह। हम सब एक सामाजिक प्राणी हैं और समाज में रह कर एक दूसरे की देखभाल करना और आपसी सहयोग की भावना से एक साझा विकास की सोच रखना तो कई जानवर तक करते हैं। वैज्ञानिक अध्ययन के मुताबिक यह जेनेटिक गुण है। कोई भी इंसान बिना आपसी सहयोग के जीवन में

आगे बढ़ नहीं सकता। मगर, दुखद है कि आज समाज में यह भावना सबसे ज्यादा विकृत हो चुकी है। जेनेटिक गुण के उपर पारिस्थिक व परिवेश-जनित सोच व व्यवहार प्रभावी हो गई है। यह आम इल्जाम है आज के दौर में कि व्यक्तिक सोच, जिसमें 'मैं' और अपने 'निजी सुख' के अलावा लोगों को कुछ दिख ही नहीं रहा, वास्तव में मानव के विनाश की पृष्ठभूमि तैयार कर रहा है। आज का दौर 'इंसटैंट-सेल्फ-ग्राटिफिकेशन' का दौर है जहां सब लोग 'साझा-सोच' को एक बोझ मानने लगे हैं। इस सोच ने 'वनअपमैनशिप' की प्रतिस्पर्धा को जंग की हद तक ले जाने का काम किया है। इसका सबसे खतरनाक असर पड़ा है बच्चों और युवाओं के लालन-पालन पर और बुजुर्गों की देखभाल पर। यह समस्या वैश्विक है, खासकर जैसे समाजों में जिनका तथाकथित तौर पर मार्डन व लिबरल पैमाने पर विकास हुआ है। परिवार और समाज, बच्चों के नर्चरेंस की जिम्मेदारी नहीं ले रहा और जब युवा व बच्चे तक भटकाव के शिकार हो रहे हैं, पूरा समाज ही चरमरा गया है। विशेषज्ञ मानते हैं कि आज विश्व की जो सबसे विकट समस्या है - आतंकवाद, इसकी भी जड़े कहीं न कहीं इसी नर्चरेंस की कमी से जुड़ी हैं। युवाओं का भटकाव व उनका आतंकवाद से प्रभावित हो जाना गंभीर चिंतन का विशय है। यह बेहद खतरनाक 'कल्चरल इवोल्यूशन' है जिससे पिछड़ा और विकसित दोनों ही समाज आज रूबरू है। 'सेंस आफ एलायनेशन', यानि परिवार व समाज से कटा हुआ व उपेक्षित महसूस करना, युवाओं में ही नहीं, बच्चों में भी यह भाव पनप रहा है। 18 साल से कम के युवा हो रही पीढ़ी में हिंसा तथा कानून उलंघन की प्रवृत्ति बढ़ रही है। विकसित देशों में यह ज्यादा है। बात सिर्फ बच्चों व बुजुर्गों की ही नहीं, समाज आज किसी भी अच्छे व उच्च जीवन मूल्य की नर्चरेंस नहीं कर रहा। अपने स्वार्थ के लिए सारे मूल्य ताक पर रख दिये गये हैं। इसके अलावा, समाज के लोग भाषा, तहजीब, अपने प्राकृतिक संसाधनों, सफल परंपराओं, आदि का नर्चरेंस भी नहीं कर पा रहे। यह गलत 'कल्चरल इवोल्यूशन' है। इसे कल्चरल रिग्रेशन माना जाना चाहिए।



3. कांसेनसियसनेस: यानि सही-गलत के फर्क की तहजीब। यह भावना और भी शसक्त और महत्वपूर्ण है। इंसान जब सभ्य समाज में रहता है तो उसकी सबसे बड़ी पूंजी होती है सही-गलत में फर्क कर सकने की उसकी तहजीब एवं अदब। किसी भी समाज में कांसेनसियसनेस एक बेहद संवेदनशील सांस्कृतिक मसला है। हर संस्कृति की अपनी सही-गलत की परिभाषा व पहचान है। इसकी शुरुआत भाषा-जुबान से होती है और इंसान के हर व्यवहार और कर्म में इसकी स्पष्ट छवि दिखनी चाहिए। पहले धर्म और आस्था के आधार पर सही-गलत की तहजीब थी। आज धर्म और आस्था के नाम पर ही सबसे ज्यादा जुल्म-अत्याचार और भ्रष्टाचार हो रहा है। मॉडर्न समाज में कानून और प्रजातांत्रिक जीवन मूल्यों के आधार पर सही-गलत का फर्क होता है मगर आज कानून को भी लोगों ने, खासकर वर्चस्व वाले लोगों ने अपना गुलाम बना लिया है। न्याय तंत्र की समस्याएं जटिल हैं। भ्रष्टाचार कानून के वजूद को ही मिटाने पर तुला है। स्वार्थ ही सबसे बड़ी तहजीब बन गयी है। मनुष्य मूलतः एक सामाजिक प्राणी है और उसे हमेशा अपने समाज से मान्यता की चाह रहती है। मगर, जब समाज ही गलत को सही और सही को गलत बताने लगे तब नर्क धरती पर उतर आता है। आज जो समस्या है वह यही है। अपने स्वार्थ के लिए हर स्थापित मानक को तोड़ा गया और नये मानकों को कभी स्थापित ही नहीं होने दिया गया। समाज ही भ्रष्टाचार को सही करार देने लगा है और जो जितना भ्रष्ट हो, वही वर्चस्व पा जा रहा है। यह बेहद खतरनाक 'कल्चरल इवोल्यूशन' है। आज के मॉडर्न समाज में संस्कृति की सबसे अहम चुनौती है यह तत्व - कांसेनसियसनेस। कोई भी संस्कृति सफल तभी मानी जाती है जब सही-गलत को लेकर एक व्यापक मान्य सामाजिक माहौल हो। कहा जाता है कि इंसानों में अच्छाई जब 'आटो-बिहेवियर' हो जाये, तब समझा जाना चाहिए कि उस समाज का बेहतर सांस्कृतिक विकास हुआ है। 'आटो-बिहेवियर', यानि किसी को अच्छे-बुरे के बीच फर्क को मनवाने के लिए कोई प्रयास व सोच न लगानी पड़े और वह स्वतःस्फूर्त हो जाये, तो समझिये कि समाज व संस्कृति उम्दा है। यह

## Thank You for previewing this eBook

You can read the full version of this eBook in different formats:

- HTML (Free /Available to everyone)
- PDF / TXT (Available to V.I.P. members. Free Standard members can access up to 5 PDF/TXT eBooks per month each month)
- Epub & Mobipocket (Exclusive to V.I.P. members)

To download this full book, simply select the format you desire below

